बालकथा का विखंडन और पुनर्रचना

❑ राजाराम भादू

'कछुआ और खरगोश'

एक था कछुआ, एक था खरगोश । दोनों ने आपस में दौड़ की शर्त लगाई । कोई कछुए से पूछे कि तूने शर्त क्यों लगाई ? क्या सोचकर लगाई ?

बहरहाल..तय यह हुआ कि दोनों में से जो नीम के टीले तक पहले पहुंचे, उसे एखतेयार है कि हारने वाले के कान काट ले ।

दौड़ शुरु हुई तो कछुआ रह गया और खरगोश यह जा वह जा। मियां कछुवे बजादारी की चाल चलते रहे। कुछ दूर चलकर खयाल आया कि अब आराम करना चाहिए, बहुत चल लिए । आराम करते-करते नींद आ गयी।

न जाने कितना जमाना सोते रहे । जब आंख खुली तो सुस्ती बाकी थी । बोले -

''अभी क्या जल्दी है .. इस खरगोश के बच्चे की क्या औकात है कि मुझ जैसी अजीम विरसे के मालिक से शर्त जीत सके । वाह भई वाह, मेरे क्या कहने ।''

काफी जमाना सुस्ता लिये तो फिर मंजिल की तरफ चल पड़े । वहां पहुंचे तो खरगोश न था । बेहद खुश हुए। अपनी मुस्तैदी की दाद देने लगे । इतने में उनकी नजर खरगोश के एक पिल्ले पर पड़ी। उससे खरगोश के बारे में पूछने लगे ।

खरगोश का बच्चा बोला - ''जनाब ! वह मेरे वालिद साहब थे । वह तो पांच मिनट बाद ही यहां पहुंच गए थे और मुद्दतों आपका इन्तजार करने के बाद मर गए और वसीयत कर गए कि कछुए मियां यहां आ जाएं जो उनके कान काट लेना । लिहाजा लाइये इधर कान ।''

कछुए ने फौरन ही अपने कान और अपनी सिर खोल के अन्दर कर ली और आज तक छिपाए फिरता है।

प्यासा कौवा

एक प्यासे कौवे को एक जगह पानी का मटका पड़ा नजर आया । बेहद खुश हुआ। लेकिन यह देखकर मायूसी हुइ कि पानी बहुत नीचे-सिर्फ मटके की तह में थोड़ा-सा है। अब सवाल यह था कि पानी को किस तरह ऊपर लाए और अपनी चोंच तर करे ।

इत्तेफाक से उसने हिकायाते-लुकमान पढ़ रखी थी । पास ही बहुत से कंकर पड़े थे, उसने एक-एक कंकर उसमें डालना शुरु किया। कंकर डालते-डालते सुबह से शाम हो गई । प्यासा तो था ही, निढ़ाल हो गया। मटके के अन्दर नजर डाली तो क्या देखता है कि कंकर ही कंकर हैं, सारा पानी कंकरों ने पी लिया है । बेएख्तयार उसकी जबान से निकला - ''हत तेरे लुकमान की।''

फिर बेसुध होकर जमीन पर गिर गया और मर गया।

अगर वह कौवा कहीं से एक नलकी ले आता तो मटके के मुंह पर बैठा बैठा पानी को चूस लेता । अपने दिल की मुराद पाता, हरगिज जान से न जाता।

- इब्ने इंशा ('उर्दू की आखिरी किताब' से)

इब्ने इंशा ने इन कहानियों के साथ सृजनशील खिलवाड़ की है । इस खिलवाड़ से सर्वप्रथम तो पाठक को तीव्र झटका लगता है । पाठक का मन सहसा इन कहानियों को इस स्वरूप में स्वीकार ही नहीं कर पाता । जैसे कथाओं को इब्ने इंशा ने सिर के बल खड़ा कर दिया हो । हम इन कहानियों के एक ही कथन के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि उस कथ्य के साथ जरा-सी छेड़छाड़ को लगभग बर्दाशत नहीं कर सकते । इब्ने इंशा भी सर्वप्रथम तो हमारी चेतना को झटका देना चाहते हैं । वे जानबूझकर कथ्य को उलट देते हैं।

हमारी आदर्श पर टिकी चेतना की ईंटें खिसकाते हैं और घायल चेतना अपने जर्जर आदर्शों को बेबसी से देखने लगती है । यही इब्ने इंशा के व्यंग्य की खूबी है । विखंडन और पुनर्रचना के बूते उन्होंने यह संभव किया है ।

उत्तर-आधुनिकता के दौर में विखंडन (डी-कंस्ट्रंशन) पाठ (टैक्स्ट) के निहितार्थ को समझने की प्रक्रिया की एक प्रमुख पद्धति मानी जाती है । जॉक देरीदा ने विखंडन के जरिये संरचना के वर्चस्व को करारी चुनौती प्रस्तुत की है । शाब्दिक कलाओं में विखंडनवादी पाठ-भेद ने नयी उपलब्धियां अर्जित की हैं । लेकिन लोककथाओं/गाथाओं के संदर्भ में विखंडन के साथ पुनर्रचना खासी अहमियत रखती है ।

विखंडन और फिर पुनर्रचना (लोक कथा/गाथा के संदर्भ में भी) कोई सरल उपक्रम नहीं है । लेखकीय कृति का विखंडन तो किया गया है लेकिन उसकी पुनर्रचना के प्रयास अभी ना के बराबर ही हैं । संरचना के वर्चस्व को अवश्य गंभीर चुनौती दी गयी है और पाठ (टैक्स्ट) के समानान्तर व्याख्या (इंटरप्रिटेशन) को खड़ा किया गया है (यदि इसे पुनर्रचना कहा जा सके)। लोक कथा/गाथा यहां तक कि समूचे लोकसाहित्य के विखंडन और पुनर्रचना की दीर्घ और समृद्ध परंपरा है जो प्राच्य संस्कृतियों के साथ आरंभ हुई । इब्ने इंशा की उपरोक्त पुनर्रचनाएं देरीदा के विखंडन से बहुत पहले आ चुकी थीं । निसंदेह इस उपक्रम के लिये सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि और सर्जनशीलता की जरुरत होती है।

इस संक्षिप्त परिप्रेक्ष्य के बाद हम बालकथा के विखंडन और पुनर्रचना पर कुछ बात करेंगे। बालकथाओं में सामान्यत: एक तो छोटी लोककथाएं, नीतिकथाएं, बोधकथाएं और परियों की कहानियां होती हैं; दूसरे लेखकीय कृतियां होती हैं। पहली प्रकार की चीजें सदियों से संस्कृति की गतिशील धारा की जीवंत धरोहर हैं । दूसरे प्रकार की चीजें सायास और सतत् सर्जना का हिस्सा हैं। पहले प्रकार की चीजें प्राचीन मौखिक परंपरा में चली आ रही हैं। दूसरी प्रकार की कृतियां आधुनिक हैं । दोनों ही प्रकार की चीजें समाज विशेष की सांस्कृतिक चेतना और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन फर्क यह है कि सायास लेखन से उपजी कृतियों को जांचने-परखने और उनमें निहित मूल्य-बोध की समीक्षा पद्धति पर्याप्त विकसित है । जबकि लोक साहित्य के विश्लेषण और विचार की पद्धति सामान्यत: बहुप्रचलित नहीं है और बालकथाओं के मामले में तो स्थिति और भी चिंताजनक है। कई बार तो इनके चयन तक में सावधानी देखने को नहीं मिलती।

बालकथाओं में सामान्यत: एक तो छोटी लोककथाएं, नीतिकथाएं, बोधकथाएं और परियों की कहानियां होती हैं; दूसरे लेखकीय कृतियां होती हैं। पहली प्रकार की चीजें सदियों से संस्कृति की गतिशील धारा की जीवंत धरोहर हैं । दूसरे प्रकार की चीजें सायास और सतत् सर्जना का हिस्सा हैं। पहले प्रकार की चीजें प्राचीन मौखिक परंपरा में चली आ रही हैं। दूसरी प्रकार की कृतियां आधुनिक हैं । दोनों ही प्रकार की चीजें समाज विशेष की सांस्कृतिक चेतना और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

बालकथाओं के प्रति संकलनकर्ता और संपादकों में या तो हेय-दृष्टि और उपेक्षा-भाव पाया जाता है । अथवा इनके प्रति आदर और पवित्रतावादी आग्रह । जाहिर है कि ये दोनों ही दृष्टियां आत्यंतिक हैं । लोककथाओं की लगभग मिथकीय हो चुकी संरचना के पवित्र आतंक से मुक्त होने की जरुरत है । तमाम लोक कथाएं, नीतिकथाएं, बोधकथाएं और परियों की फंतासियां अन्तत: समाज और संस्कृति में विद्यमान मूलभूत अन्तर्विरोधों- परंपरा और परिवर्तन, जड़ता और गतिशीलता तथा यथास्थिति और द्वन्द्व को अभिव्यक्त करती हैं । यह ध्यान रखना होगा कि लोककथा/गाथा कालान्तर में परिवर्तित होती रही हैं और विभिन्न स्थानों पर इनके भिन्न स्वरूप मिलते हैं ।

इस तथ्य के मद्देनजर इन कथाओं के प्रति विवेकशील किन्तु सर्जनात्मक बर्ताव जरुरी हो जाता है । किन स्थापित मूल्यों की ये कथा/गाथा संवाहक हैं ? यथास्थिति के किन पहलुओं की ये पोषक है ? कहां ये नयी पीढ़ी का प्रभावी संस्कारीकरण और अनुकूलन कर रही हैं? अन्तत: कथा का अभिप्राय और निहितार्थ क्या है ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे हर कथा की जांच-परख में मदद मिल सकती है। विखंडन और पुनर्रचना ऐसी व्यावहारिक कार्यवाही है जिसके दौरान कथा का उज्ज्वल अथवा अंधेरा पक्ष अपने वस्तुसत्य में समस्त ऊर्जा अथवा कमजोरी के साथ उद्घाटित हो जाता है।

अब कुछ बालकथाओं के माध्यम से हम इनके अभिप्राय और निहितार्थ की पड़ताल करें । एक कहानी है - 'एकता में बल'; जिसमें एक बूढ़ा बाप अपने निकम्मे और झगड़ालू बेटों को नसीहत

देने की खातिर लकड़ियों को अलग-अलग तथा फिर एक साथ तुड़वाता है । लड़के एक साथ गट्ठर में बंधी लकड़ियों को नहीं तोड़ पाते । इससे सबक निकलता है कि एकता में बल है लेकिन लगभग इस सबक के साथ ही यह सवाल भी निकलता है कि एकता का मकसद क्या है ? यदि बेटों में परस्पर मतभेद के कोई ठोस कारण थे तो मतभेद उचित ही था। (लड़कों में परस्पर किसी हिंसक झगड़े का विवरण कहानी में नहीं मिलता ।) यदि एकता का कोई ठोस नैतिक धरातल नहीं है तो उसे कहां तक उचित कहा जा सकता है? यह सबक एकांगी और अमूर्त है और अन्तत: दोषपूर्ण है । (इब्ने इंशा ने इसे भी विखंडित कर पुनर्सृजित किया हैं, देखें -'उर्दू की आखिरी किताब') ।

'कछुआ और खरगोश' कथा में इब्ने इंशा कछुआ के खोल में मुंह छुपाने की प्रकृतिप्रदत्त आदत से एक अभिप्राय की सृष्टि कर इस प्रक्रिया को उद्घाटित करते हैं कि कैसे किसी कथावस्तु में निहितार्थ को स्थापित किया जा सकता है । लोककथा की सतत् आवृत्ति उसके अभिप्राय और निहितार्थ को रूढ़ कर देती है और उसकी भूल संरचना का वर्चस्व हो जाता है । ऐसी स्थिति में एक भिन्न अभिप्राय को आरोपित कर इस स्थिति को दर्शाया जा सकता है ।

इसी तरह एक प्राचीन और लगभग वैश्विक स्तर पर व्याप्त मूल्य है -स्वामीभक्ति । इसे लेकर अनेक लोककथाएं दुनियां भर में प्रचलित हैं । इनमें अनेक कथाओं का कोई सुदृढ़, तार्किक आधार नहीं है बल्कि यह मूल्य-'स्वामीभक्ति' - अपने में ही कथा की तर्कभूमि और औचित्य बन गया है । यहां तक की स्वामीभक्ति के इर्द-गिर्द अनेक ऊलजलूल कथाएं भी मिलती हैं, जैसे-एक बंदर और राजा की कथा । राजा ने एक बंदर पाला हुआ था जो उसकी बहुत सेवा करता था। एक दिन राजा सो रहा था लेकिन एक मक्खी बार-बार राजा की नाक पर बैठकर उसकी नींद में खलल डाल रही थी। बंदर के बार-बार उड़ाने पर भी मक्खी नहीं मानी तो बंदर ने तलवार तान ली । जब बंदर ने वार किया तो मक्खी उड़ गई और राजा की गर्दन धड़ से अलग हो गई । इस कथा का मंतव्य क्या है: यदि यह कि किसी बंदर पर इतना ज्यादा भरोसा करना ठीक नहीं, तब तो ठीक है । लेकिन फिर भी यह अपवाद की कथा ही है । सामान्यत: लोग बंदरों पर इतना भरोसा कहां करते हैं ? जरुर यह उस राजा की सनक रही होगी और सनक के लिए उसे भुगतना पड़ा। सनक कोई अच्छी चीज नहीं - कथा का एक अभिप्राय यह भी हो सकता है । लेकिन राजाओं की जैसी सनकें हुआ करती थीं, उनमें यह कोई अच्छा उदाहरण नहीं है । जो भी, यह कोई बेहतर कथा नहीं है लेकिन आप पायेंगे, बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में यह कथा अक्सर पायी जाती है।

महिलाओं को मूर्ख और अदूरदर्शी साबित करने वाली कथाओं की भी कमी नहीं है । पितृसत्तात्मक ढांचे और लिंग-पूर्वग्रह ने ऐसी कथाओं के मामले में खासी भूमिका निभायी है । विखंडन और पुनर्रचना इस संदर्भ में बहुत काम की हो सकती हैं, यदि हम उपरोक्त प्रसंग के प्रति सजग दृष्टिकोण लेकर चलें । 'एक गृहिणी और नेवले' की प्रसिद्ध कथा याद करिए, जिसमें नेवला सांप को मारकर दरवाजे पर खड़ा गृहिणी का इंतजार कर रहा है लेकिन उसे होठों से खून चाटते देख गृहिणी को संदेह होता है कि नेवला उसके बच्चे को खा गया है । वह नेवले के ऊपर घड़ा पटक कर उसे मार देती है । हालांकि जब वह अपने बच्चे को सुरक्षित पाती है और देखती है कि पास ही एक सांप मरा पड़ा है तो पश्चाताप और विलाप करती है । गृहिणी असुरक्षा बोध और ममत्व के चलते शंकालु हो सकती है । लेकिन यदि कहानी में गृहिणी से कुछ समय पहले गृहपति को घर लौटते बताया जाये और उसे भी नेवला होठों से खून चाटता मिले तो क्या उसकी प्रतिक्रिया कुछ भिन्न होगी ? पुरुष भी उतने ही शंकालु और अदूरदर्शी हो सकते हैं । फिर इस कहानी के पात्र को बदलकर क्यों नहीं देखा जाता ? और यह भी कि क्या नेवले को मरवाये वगैर काम नहीं चल सकता ?

अब थोड़ा उन कथाओं पर बात करें जो प्राचीन मौखिक परंपरा से भिन्न सायास लिखित परंपरा के अन्तर्गत सृजित हैं । इन कृतियों में विखंड़न और पुनर्रचना की प्रक्रिया को वैसे लागू नहीं किया जा सकता, जैसा हमने पूर्व में लोक कथाओं के संदर्भ में देखा है । मसलन 'छोटा जादूगर'(प्रसाद) के कथ्य में मां को आखिर में जीवित और प्रसन्न दिखाएं तो प्रभान्विति वह नही रह जायेगी । यह कहानी अन्तत: अपनी त्रासदी में महान है । छोटा जादूगर अपनी मां को खो देता है लेकिन हमें पा लेता है । इसी तरह 'ईदगाह' (प्रेमचंद) में यदि हामिद भी मेले से कोई खिलौना ले आये किन्तु उसे इस पर पश्चाताप हो और वह सोचे कि बेहतर होता यदि मैं एक चिमटा ले आता, तो शायद बात बनेगी नहीं । असल में, यहां संरचना उतनी लचीली नहीं है । कथ्य के मंतव्य और उसमें अन्तर्निहित मूल्यबोध के प्रति लेखक पहले से स्पष्ट था। यदि कथा में मूल्य का सत्य से दृढ़ संबंध नहीं होगा तो कालान्तर में यह स्वत: अप्रसांगिक हो जायेगी । इसके बनिस्पत लोककथा की संरचना कहीं ज्यादा लचीली होती है । लेकिन हमारा ट्रीटमेंट इससे उलट

होता है । हम लोककथा के कथ्य और मूल को अपरिवर्तनीय और अक्षुण्य मानते हैं । जबकि लेखकीय कृतियों से छेड़छाड़ का इरादा रखते हैं । (कई बार कर भी गुजरते हैं) । दूसरे जैसा कि हमने पहले कहा, इन कृतियों की जांच-परख की पर्याप्त विकसित पद्धति हमारे पास है, मसलन पाठ (टैक्स्ट) को लेकर काल्पनिक प्रश्नों की सर्जना करके हमारे लिए काफी कुछ कर सकने की गुंजाइश है ।

आखिर में, एक कथा के प्रसंग से हम अपनी बात समाप्त करना चाहेंगे । आपने 'एक बहेलिया, पक्षी और जाल' वाली कथा जरूर सुनी होगी । एक बहेलिया अपना जाल बिछाए है । पक्षी जाल के बीच फैले दानों को चुगने के लिए आतुर हैं । एक बूढ़ा पक्षी उन्हें आगाह करता है । लेकिन पक्षी लालच नहीं रोक पाते, दाने चुगते हैं और जाल में फंस जाते हैं । बूढ़ा पक्षी जो जाल से परे था, उन्हें सलाह देता है कि वे एक साथ जोर से पंख फड़फड़ाएं और जाल लेकर उड़ जायें । पक्षी यही करते हैं । कथा यहीं समाप्त हो जाती है । कथा के साथ दिये चित्र में सामान्यत: जाल सहित आकाश में उड़ते पक्षियों और हाथ फैलाये उन्हें देखते बेबस बहेलिये को दिखाया जाता है । कथा का अभिप्राय संभवत: 'एकता में बल', 'लालच बुरी बला' या 'बुजुर्ग की समझदारी' है ।

बालकथाओं के प्रति संकलनकर्ता और संपादकों में या तो हेय-दृष्टि और उपेक्षा-भाव पाया जाता है । अथवा इनके प्रति आदर और पवित्रतावादी आग्रह । जाहिर है कि ये दोनों ही दृष्टियां आत्यंतिक हैं । लोककथाओं की लगभग मिथकीय हो चुकी संरचना के पवित्र आतंक से मुक्त होने की जरुरत है । तमाम लोक कथाएं, नीतिकथा, बोधकथाएं और परियों की फंतासियां अन्तत: समाज और संस्कृति में विद्यमान मूलभूत अन्तर्विरोधों-परंपरा और परिवर्तन, जड़ता और गतिशीलता तथा यथास्थिति और द्वन्द्व को अभिव्यक्त करती हैं ।

अब कथा को थोड़ा आगे बढ़ाएं। खाली हाथ निराश बहेलिया घर पहुंचता है । घर पर उसकी पत्नी और बच्चे भूखे बैठे उसका इंतजार कर रहे हैं । पत्नी यह जानकर और भी दुखी होती है कि पक्षी जाल भी ले उड़े । यह कथा का त्रासद यथार्थ है जो पहले के सभी स्थापित अभिप्रायों पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है ।

कथा को जरा और विकसित करें । एकाएक बहेलिए की पत्नी को ख्याल आता है कि जाल को लिए-लिए पक्षी बहुत दूर नहीं जा सकते । वह बहेलिए को उधर भेजती है जिस दिशा में पक्षी जाल लेकर उड़े थे । बहेलिया जाता है और थोड़ा भटकने पर वाकई उसे एक जगह तमाम पक्षी जाल में उलझे फड़फड़ाते नजर आते हैं। और बूढ़े पक्षी का कहीं कोई अता-पता नहीं था।

लेकिन इतने पक्षियों की मौत का सदमा बच्चे शायद बर्दाश्त न कर सकें । आप उन्हें कह सकते हैं कि वे पक्षियों को बचाने के लिए कुछ करें । लो, इन बच्चों ने पक्षियों को बचाने का रास्ता निकाल ही लिया।

''निश्चय ही दूर जाकर पक्षी जाल में उलझे गिर पड़े और असहाय फड़फड़ाने लगे। उनकी यह दशा देखकर बूढ़े पक्षी का दिल दुख से रो उठा। वह सोचने लगा - क्या करूं ? एकाएक उसे श्यामू चूहे कि याद आयी । वह उड़ा श्यामू के पास। श्यामू चूहा दौड़ता आया । देखते-देखते उसने अपने पैने दातों से जाल को काटकर पक्षियों को मुक्त कर दिया ।

जब बहेलिया वहां पहुंचा तो उसे जाल के टुकड़े मिले । वह उन्हें समेटकर घर ले आया ।''

चलो, बहेलिए का भी ज्यादा नुकसान नहीं हुआ ।

यहीं शायद आप यह सवाल उठाना चाहें कि क्या बच्चों के साथ यह कथा-प्रयोग (जो अभी तक 'कथित विखंडन और पुनर्रचना' है) संभव भी होगा ? कहीं हम बच्चों से ज्यादा अपेक्षा तो नहीं कर रहे ?

निश्चय ही, यह सवाल स्वाभाविक है । लेकिन हमारा मानना है, बच्चों के साथ मजे से यह प्रक्रिया सम्पन्न की जा सकती है । बच्चों के परिचित कथा संसार से चयन करना इस प्रक्रिया की एकमात्र जरूरी शर्त है । हां, पहले आप उनकी परिचित किसी कथा का विखंडित/पुनर्रचित रूप उनके सामने रखें। (चाहे तो इब्ने इंशा की मदद ले लें) । हां, एक बार उन्हें जरूर झटका लगेगा । (जैसा हमें भी लगा था।) बच्चे लोककथा/गाथा की रूढ़ संरचना और अभिप्राय के अभ्यस्त हो चुके होते हैं । वे यह भी खोजने लगते हैं कि इस कथा से उन्हें क्या शिक्षा मिलती है । इस तयशुदा ढ़ांचे को ध्वस्त करने से सर्जना के नये आयाम और प्रश्नानुकूलता की भाव-भूमि खुलती है । फिर आप देखेंगे, बच्चों की कल्पना और सृजनशीलता कैसे ऐसी कथाओं के साथ खिलवाड़ करती है। प्रश्न, हां प्रश्न इस प्रक्रिया के मूल उत्प्रेरक होंगे । तब बच्चों द्वारा पाठ (टैक्स्ट) की पुनर्रचना में जबर्दस्त आंतरिक तार्किक संगति होगी । ◆